ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-6 No. 16 June 2020

ग्रहणी रोग चिकित्सा में पर्पटी कल्प की भूमिका

डा मीरा अन्तिवाल
रीडर
एस. ए. एस. आयुर्वेद मेडिकल
कॉलेज एवं हॉस्पिटल, वाराणसी

ग्रहणी रोग का अर्थ ग्रहणी नामक अवयव का विकार या रोग है। वाङ्मय में ग्रहणी को अग्नि का अधिष्ठान माना गया है-'अग्न्यधिष्ठानमन्नस्यग्रहणाद् ग्रहणी मता। नाभेरुपर्यग्निबलेनोपष्टब्धोबृंहिता।।' (च.चि.१५/५६)

षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता।

पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता।। (च.चि.४०/१६८)

आचार्य सुश्रुत ने षष्ठी पित्तधरा कला को ग्रहणी का स्थान माना है। 'बलमारोग्यमायुश्च प्राणाश्चाग्नौ प्रतिष्ठिता:।' (च.सू. २७/३४२) अर्थात् बल, आरोग्य, आयु और प्राण, अग्नि के आश्रित है और अग्नि का अधिष्ठान ग्रहणी है। यह अन्न को ग्रहण करती है इसलिए ग्रहणी कहा गया है- **"अन्नस्य ग्रहणात् ग्रहणी मता।"**

वाग्भट ने कहा है कि यह अन्तराग्नि का अधिष्ठान होने से आमाशय और पक्वाशय के मध्य में स्थित रहकर चतुर्विध अन्न को बल पूर्वक धारण कर पित्त के तेज से पचाती तथा शोषण करती है इसके व्यापार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह अपक्व अन्न का धारण करती है तथा पक्व अन्न को पार्श्व से छोड़ देती है। अत: ग्रहणी का कार्य ग्रहण, धारण, पचन, शोषण और मुञ्चन है।

ग्रहणी रोग ग्रहणी की विकृति से होता है इसमें आवयविक तथा व्यापारिक दोनों प्रकार की विकृतियाँ संभव है ग्रहणी दोष विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, मन्दाग्नि से होता है परन्तु ग्रहणी रोग ग्रहणी की दुष्टि से होता है। आजकल अत्यधिक रफ्तार भरी जिन्दगी में आहारजन्य कारण- चाय, काफी, कोलड्रिंक, मिर्च मसाला, तैल, घी, मक्खन, ब्रेड, शराब, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू का सेवन है। विहारजन्य कारण में रात्रि में देर से सोना, सुबह देर से उठना, खाना खाने के बाद वाहन से तुरन्त काम पर चले जाना इत्यादि आधुनिक युग में ग्रहणी रोग के मुख्य कारण हो सकते है।

अतिसृष्टं विबद्धं वा द्रवं तदुपदिश्यते। तृष्णाअरोचकवैरस्यप्तसेकतमकान्वित:।

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-6 No. 16 June 2020

शूनपादकरः सास्थिपर्वरूक छर्दनज्वरः।लोहामगन्धिस्तिक्ताम्ल उद्गारश्चास्य जायते।। --(च.चि. १५/५३)

अर्थात् ग्रहणी रोग से पीड़ित रोगी अत्यन्त पतला, अधिक बार तथा कभी-कभी बंधा हुआ विष्टम्भ के साथ मल त्याग करता है। रोगी प्यास, अरूचि, मुखवैरस्य प्रसेक और तमकश्वास से ग्रसित रहता है, इसके हाथ-पैर शोथयुक्त होते है। अस्थि तथा सन्धियों में पीड़ा होती है। रोगी वमन करता है ज्वर से पीड़ित रहता है। लोहे और आम के समान गन्ध युक्त, तिक्त और अम्ल डकार लेता है।

ग्रहणी रोग को Irritable bowel syndrome/ Malabsorption syndrome तुलना करते है क्योंकि इसके कुछ-कुछ लक्षण ग्रहणी रोग से मिलते हैं। (Irritable bowel syndrome/ Malabsorption syndrome)की सफल चिकित्सा आधुनिक चिकित्सा में पूर्णतया सम्भव नहीं है, किन्तु आयुर्वेद में आचार्यों ने ग्रहणी रोग की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। जब जीर्ण ग्रहणी रोग में रस औषधियों, काष्ठऔषधियों से भी मरीज को पूर्णतया लाभ नहीं मिलता है तो पर्पटी कल्प से शरीर को निरोग बनाया जा सकता है।

ग्रहणी रोग :

पाचन-संस्थान के विकारों में एक अन्यतम तथा प्रधान विकार ग्रहणी रोग है, जिसमें अग्निमन्द होकर पाचन-तन्त्र निष्क्रिय हो जाता है। पाचन-संस्थान के दो ही प्रमुख अंग हैं- एक वे जिनका सम्बन्ध खाये हुए अन्नका ठीक प्रकार से पाचन से है, दूसरे वे अंग जिनका सम्बन्ध सम्पाचित अन्नरस का सम्यक् रीति से शोषण करना है। इस प्रकार पूरे पाचन-संस्थान में दो ही क्रियाओं का समावेश होता है- पाचन एवं शोषण।

सर्वप्रथम पचने की क्रिया दूषित होती है। इसके दूषित होने से विविध प्रकार के अजीर्ण अग्निमन्द, प्रवाहिका, अतिसार, आमातिसार प्रभृति रोग होते हैं और इन रोगों का यदि उचित चिकित्सा न की जाय और ये रोग अधिक दिन तक चलते रहे तो पाचन-अवयवों को भी दूषित कर देते हैं; जिससे अन्नरस का सम्यक् शोषण नहीं हो पाता। इन शोषण के अवयवों में ग्रहणी एक प्रधान अवयव है जिसकी दुष्टि को 'ग्रहणी' रोग कहा जाता है।

ग्रहणी के दूषित होने में अग्निमन्द के साथ अहितकर भोजन का सेवन प्रधान कारण होता है। अतिसार के बाद या अतिसार के रहते हुए भी या बिना

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-6 No. 16 June 2020

अतिसार के भी अग्नि के अत्यधिक दूषित हो जाने से ग्रहणी की दूषकता सुश्रुत के निम्नांकित संदर्भ से प्रमाणित होती है–

अतीसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः।

भूयः सन्दूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत्।। (सु.ऊ. ४०/१६६)

इस प्रकार एक–एक प्रकुपित दोष व त्रिदोष द्वारा ग्रहणी दूषित हो जाती है और तब यह भुक्त अन्न को पक्व और अपक्व रूप में गुदमार्ग द्वारा बाहर निकालती रहती है जिसके फलस्वरूप पतला या गाढ़ा मल वेदना के साथ बार–बार मल–मार्ग से बाहर निकलता रहता है। अतः इस अवस्था में रोगी के पाचन तथा शोषण दोनों क्रियाएँ ही विकृत हो जाती हैं, फलतः रोग कष्टसाध्य हो जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकार से पाचन सम्बन्धी रोगों का अन्तिम परिणाम ग्रहणी रोग है तथा सम्पूर्ण पाचन–संस्थान का नवीनीकरण करना ग्रहणी चिकित्सा का लक्ष्य होता है।

चिकित्सा – ग्रहणी वह व्याधि है जिसमें पाचन तथा शोषण नामक उभयविध कार्य विकृत हो जाते हैं अतः ऐसी चिकित्सा जो अजीर्ण को भी ठीक करे, साथ ही अतिसार पर भी नियन्त्रण रखे, उसे आम और निराम दोनों अवस्थाओं का विचार करके प्रारम्भ करना चाहिए।

यदि रोग नया हो तथा विकृति बहुत बढ़ी हुई न हो तो सामान्य चिकित्सा उपचारों से रोगी स्वस्थ हो जाता है; परन्तु रोग बहुत बढ़ गया हो, पुराना और कष्टसाध्य हो गया हो तो चिकित्सालय में रखकर पर्पटी–कल्प–विधि द्वारा चिकित्सा करने पर ही रोगी पूर्णारोग्य हो पाता है।

पर्पटी–कल्प :

पर्पटी–कल्प से शरीर का कायाकल्प तथा नवीनीकरण होता है। आयुर्वेद की यह अमूल्य देन है जिससे विश्व की सभी चिकित्सा–पद्धतियाँ वञ्चित है :

१. ग्रहणी रोग में जब कोई सामान्य चिकित्सा लाभदायक प्रमाणित नहीं होती, तब पर्पटी–कल्प द्वारा चिकित्सा की जाती है जो इस रोग की सफल चिकित्सा है।

२.पर्पटी–कल्प पाचन–संस्थान में पाचन–क्रिया के सक्रिय पाचक रसों की वृद्धि कर स्वस्थ अन्न–रस का निर्माण करता है। आन्त्रिक रसों को जागृत कर आमांश

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-6 No. 16 June 2020

का पाचन करता है एवं मलांश को सरलता से बाहर निकाल कर वायु की उत्पत्ति को नियन्त्रित करता है। अत: कल्प-चिकित्सा का लक्ष्य पाचन-संस्थान की पुरानी श्लैष्मिककला को झरा कर उसके स्थान पर नई श्लैष्मिककला का निर्माण तथा शोषणांकुरों का पुनर्जनन एवं उन्हें अधिक कार्यक्षम बनाना होता है, जिसके फलस्वरूप पाचन और शोषण की दोनों क्रियाएँ प्राकृत हो जाती हैं।

३.रोगी को पूर्ण विराम से बिस्तर पर रखना होता है। उसके पाचन-संस्थान को मुख से लेकर गुदपर्यन्त आमाशयान्त्र-प्रभृति अवयवों को पूर्ण विराम देने के उद्देश्य से रोगी को अन्न, मसाले प्रभृति सामान्य ठोस भोजन बन्द कर केवल द्रवाहार-दूध अथवा तक्र पर रखकर चिकित्सा की जाती है। पर्पटी-कल्प जीवन की एक ऐसी चर्या है जिसमें सभी अन्न त्यागकर केवल दुग्ध, तक्र व फलों के रस का सेवन करना होता है, जिससे जीवन के अनियमित आहार-विहार से मंद हुई जठराग्नि पुन: उत्तेजित हो जाती है और धीरे-धीरे अग्नि की वृद्धि होती है और पूर्ण स्वास्थ्य लाभ होता है।

विशेष- सर्वप्रथम यह निर्णय करना चाहिए कि दूध व तक्र में से कौन-सा द्रव पदार्थ रोगी के अनुकूल पड़ता है; तब किसी एक पदार्थ का अवलम्बन कर चिकित्सा करनी चाहिए।

१. जिस रोगी की अग्नि अधिक मन्द है, पाचनशक्ति अतिक्षीण है, कोष्ठ में वायु की अधिकता और गुद मार्ग द्वारा मल प्रवृत्ति अधिक हो तो उन्हें तक्र हितकारी है।
२. जिसकी अग्नि अधिक मन्द न हो,
३. पाचन-कर्म कुछ ठीक हो, कोष्ठ में वायु की अधिकता न हो और विबन्ध हो तो गो-दुग्ध हितकर है।
४. पित्त-प्रकृति वालों में दूध तथा शेष वात-कफ वालों में तक्र का प्रयोग हितकर है।
५. कभी-कभी दूध या तक्र में से किसी एक का प्रारम्भ कराने पर रोगी के पथ्य की प्रतिकूलता का ज्ञान हो तो पथ्य का विपर्यय कर देना चाहिए अर्थात् दूध बन्द करके तक्र, व तक्र बन्द करके दूध पिलाना प्रारम्भ कर देना चाहिए। २-३ दिनों में ही इसका ज्ञान हो जाता है। अत: जो वैद्य यह न सोचकर कोई भी पथ्य दे देते हैं वे असफल होते हैं।

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-6 No. 16 June 2020

६. पित्त-प्रकृति के रोगियों को कभी-कभी पर्पटी प्रयोग से उबकाई आने लगती है तथा अचानक पथ्य लेने की अनिच्छा होती है तब पर्पटी की अल्प-मात्रा हितकर होती है, वर्धमान मात्रा अहितकर होती है।

पर्पटी-कल्प-विधान :

१. पर्पटी-सेवन के आरम्भ के एक दिन पहले रोगी को कालादाना चूर्ण ६ ग्राम गर्म दूध से खिलाकर मात्र शोधन करना चाहिए।

स्वर्णपर्पटी-

यह शक्तिदायक और कीटाणुनाशक है I यह कीटाणुनाशक होने पर भी पञ्चामृत पर्पटी के समान या शोधन गुणयुक्त नहीं है। यदि क्षय का विकार सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त नहीं हुआ हो, शरीर कृश हो और बलवान अतिसार हो अर्थात् आन्त्र ही क्षय के विकार से विकृत हो गई हो तो स्वर्ण पर्पटी का उपयोग लाभदायक है।

जो अतिसार बहुत पुराना हो, कष्टदायक हो, पेट में विशेष पीड़ा न हो, अधिक पतले दस्त हो, रोगी को काँखना न पड़ता हो, ५-६ दस्त हो परन्तु मल अधिक प्रमाण में हो कि रोगी की अन्त्र शक्ति नष्ट हो गई हो, वह अस्थि-पंजर मात्र शेष हो तब स्वर्ण पर्पटी का उपयोग करना चाहिए।

स्वर्ण पर्पटी सेवन करने से पूर्व रोगी की मानसिक अवस्था देख लेनी चाहिए क्योंकि यह अविकृत मानसिक अवस्था में ही अच्छा काम करती है। ज्वर में, पैत्तिक विकार में, वातप्रकोप के कारण अतिसार में यह पर्पटी विशेष काम नहीं करती है।

पञ्चामृत पर्पटी-

१. पर्पटी में पञ्चामृत पर्पटी सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि अन्य पर्पटियाँ अपना कार्य शरीर के किसी विशेष अवयवों में ही करती है किन्तु पञ्चामृत पर्पटी के कार्य कोष्ठान्तर्गत पचनेन्द्रियों पर शक्तिदायक, दोषनाशक एवं कीटाणु नाशक भेद से तीन प्रकार के होते है। इसमें ताम्र भस्म है जो यकृत में अपना विशेष कार्य करती है, इससे पित्त का नि:सरण उत्तम प्रकार से होता है, यकृत को शक्ति प्रदान कर पित्तभाग की रूकावटों को दूर करता है। लौह भस्म पक्वाशय में शक्तिदायक और स्तम्भन कार्य करती है। पारे की कज्जली और लौह का वियोजन ग्रहणी में उत्तम लाभदायक होता है। इससे ग्रहणी की शिथिलता दूर होती है।

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-6 No. 16 June 2020

२. पञ्चामृत पर्पटी पित्त के विकारों में अच्छा काम करती है। चिरकालीन से ग्रहणी, अतिसार, अम्लपित्तादि रोगोत्पन्न अतिसारादि पर पञ्चामृत पर्पटी बहुत लाभदायक है। यदि अनुलोम क्षय या जीर्ण प्रवाहिका में शरीर के अन्दर विशेषत: मुख से लेकर गुदावलि तक तथा आँतो की पिच्छिल (श्लैष्मिक) त्वचा पर छोटे-छोटे व्रण हो गए हो और जलन सहित सफेद रंग का दस्त होता हो तो पञ्चामृत पर्पटी देनी चाहिए।

३. अनुपान- भूना जीरा चूर्ण और शुद्ध मधु।

४. कल्प करते समय रोगी के बल, वर्ण, वीर्य की परीक्षा करके प्रतिदिन १-१ रत्ती की मात्रा बढ़ाते हुए १०-१२ रत्ती तक बढ़ाकर फिर १-१ रत्ती के ह्रास क्रम से ही घटाना चाहिए, पर इस क्रम में जीरा और मधु की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

५. प्रतिदिन १-१ रत्ती बढ़ाना अथवा २ दिन पर १-१ रत्ती बढ़ाना दोनों विधानो का प्रयोग किया जाता है। अत: जो रोगी सबल है उनको प्रथम विधि से प्रतिदिन १-१ रत्ती बढ़ाकर तथा जो निर्बल और चिरकालिक है उनको २ दिन पर मात्रा बढ़ाकर देना उत्तम होता है। २ दिन पर मात्रा बढ़ाने से रोगी धीरे-धीरे मात्रा को सह लेता है।

६. मात्रा-विधान – स्वर्णपर्पटी १ रत्ती / पंचामृत पर्पटी १ रत्ती ± भुने जीरे का चूर्ण १ माशा ± मधु ३ माशा।

७. प्रथम दिन – पर्पटी २ रत्ती ± जीरा चूर्ण ± मधु • २ मात्रा प्रात: सायं।

८. दूसरे दिन - पर्पटी २ रत्ती ± जीरा चूर्ण ± मधु • २ मात्रा प्रात: सायं।

९. तीसरे दिन - पर्पटी ३ रत्ती • ३ मात्रा प्रात:, सायं, मध्याह्न।

१०. चौथे दिन - पर्पटी ३ रत्ती • ३ मात्रा प्रात:, सायं, मध्याह्न।

११. पाँचवे दिन - पर्पटी ४ रत्ती • ४ मात्रा दिन में ४ बार।

१२. छठे दिन - पर्पटी ४ रत्ती • ४ मात्रा दिन में ४ बार।

१३. सातवें दिन - पर्पटी ५ रत्ती • ५ मात्रा दिन में ५ बार।

१४. आठवें दिन - पर्पटी ५ रत्ती • ५ मात्रा दिन में ५ बार।

१५. नवें दिन - पर्पटी ६ रत्ती • ६ मात्रा दिन में ६ बार।

१६. दसवें दिन - पर्पटी ६ रत्ती • ६ मात्रा दिन में ६ बार।

इस प्रकार ११ वें दिन ७ रत्ती, १३वें दिन ८ रत्ती, १५वें दिन ९ रत्ती, १७वें दिन १० रत्ती, १९वें दिन ११ रत्ती और इक्कीसवें दिन १२ रत्ती तक की

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-6 No. 16 June 2020

मात्रा दें। ७ रत्ती से १२ रत्ती तक की अवधि में पर्पटी को ६ मात्रा में बाँट कर २-२ घण्टे के क्रम से दिन में ६ बार देना चाहिए। यदि २१वें दिन भी मल न बँधें और पतला ही दस्त आता रहे तो, एक सप्ताह तक प्रतिदिन १२ रत्ती की मात्रा दिन में ६ बार देते है। पुनः १-१ रत्ती की मात्रा उपर्युक्त क्रम से ही तब तक घटाते है जब तक कि २ रत्ती पर न आ जाए। इस वृद्धि-ह्रास के क्रम में १२ रत्ती पहुँचने के पूर्व ही आठ-दस रत्ती तक पहुँचने तक प्रायः मल बँध जाता है, क्षुधा जाग्रत हो जाती है और रोगी को आरोग्य-लाभ की अनुभूति होने लगती है और कल्प-समाप्ति पर रोगी अपने में पूर्ण आरोग्य का अनुभव करता है।

पर्पटी की मात्रा वृद्धि के साथ-साथ ही दूध या तक्र की मात्रा बढ़ाते रहना चाहिए तथा पर्पटी की मात्रा घटाने पर भी दूध व तक्र की मात्रा नहीं घटनी चाहिए।

ग्रहणी में कल्पाहार की व्यवस्था :

इसे दो प्रकार से किये जाने का विधान है- १. दुग्ध-कल्प द्वारा, तक्र-कल्प द्वारा। यहाँ दुग्ध-कल्प विधान पर आवश्यक निर्देश प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

१. गाय का दूध ही प्रधान है। श्यामा गाय जिसका २-३ मास का बछड़ा हो और धारोष्ण हो तो सर्वोत्तम है। यदि धारोष्ण न मिले तो गाय के १ लीटर दूध में २५० मि.ली. जल मिलाकर उबालें तथा छान कर थर्मस में भरकर रख लें। दूध में मीठा नहीं मिलाना चाहिए पर बिना मीठा मिलाये काम न चले तो थोड़ी-सी मिश्री मिला सकते हैं।

२. जब-जब भूख लगे तब-तब दूध ही पीना चाहिए। पर्पटी की मात्रा में क्रमशः वृद्धि के अनुसार रोगी की क्षुधा और अग्नि-बल का विचार करते हुए दूध की मात्रा बढ़ाते जाना चाहिए।

३. यदि अधिक भूख लगे तो १५-२० मिनट के अन्तर पर भी लिया जा सकता है। इसके लिए दूध थर्मस में तैयार रखना चाहिए।

४. प्रथम दिन से ही अन्नादि बन्द कर देना चाहिए, यदि रोगी सहन न कर सके तो प्रथम दिन से ही अन्नादि बन्द नहीं करना चाहिए बल्कि प्रथम दिन औषध के साथ ही २-३ बार में आधा लीटर दूध और पथ्य में चावल तथा मूँग की खिचड़ी देते है। दूसरे दिन से १०० मि.ली. दूध

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-6 No. 16 June 2020

की मात्रा क्रमश: बढ़ाते जाते है, खिचड़ी की मात्रा कम करते जाते है और ५-७ दिन बाद अन्नादि बन्द कर देते है।

५. जब रोगी की स्थिति सुधरने लगती है, दूध की मात्रा स्वत: बढ़ने लगती है। इस प्रकार ४० दिनों तक अन्नादि बन्द करा कर कल्प कराने के साथ औषधि-सेवन से रोगी पूर्णत: स्वस्थ हो जाता है।

६. दूध की अधिकतम मात्रा २ से ५ लीटर तक पहुँच जाती है। 10 लीटर तक पहुँचने के भी उदाहरण हैं, पर सामान्यत: २ से ३ लीटर तक दूध पच जाता है। यदि पर्पटी वृद्धि के साथ दूध पीने की क्षमता अधिक न बढ़ें हो भी चिन्तित न हों। 1-२ लीटर तक दूध भी पर्याप्त होता है।

७. पर्पटी के घटाते समय दूध की मात्रा नहीं घटाए, जितना पिया और पचाया जा सकता है, उतना पीते रहना चाहिए।

८. दूध थोड़ी-थोड़ी मात्रा में, घूँट-घूँटकर, (दूध-पीते बच्चे की तरह) पीना चाहिए, जिससे मुख में लालास्राव का मिश्रण ठीक से हो और अच्छी तरह पच सकें। पानी की तरह निगल कर नहीं पीना चाहिए।

९.दूध की मात्रा रोगी की क्षमता के अनुसार उतनी ही बढ़ाते है जिससे कि रोगी को अजीर्ण न हो। अजीर्ण होने पर यदि पेट में वायु बढ़ जाय, गुड़गुड़ाहट हो तो २-२ रत्ती शंख भस्म शहद से चटाना चाहिए।

१०.अधिक प्यास लगने पर दूध पीने के ३० मिनट बाद सर्जिकाक्षार २ माशा जल में मिला कर दें। नारियल का जल, मौसम्मी एवं अनार का रस तथा सौंफ का अर्क भी देना चाहिए।

११.भ्रम तम- अधिक मात्रा में पर्पटी होने पर सिर में चक्कर आना तथा आँखों के सामने अन्धेरा छाने लगता है जो सप्तामृत लौह ३ माशा तथा घृत मिलाकर लेने पर तत्काल बन्द हो जाता है।

१२.दूध लेने पर कभी-कभी दस्त आने लगते हैं, परन्तु वे अपने आप बन्द हो जाते हैं। यदि जल्दी रोकना हो तो क्षीरपाक-विधि से दूध बनाकर पिलाना चाहिए। क्षीरपाक-विधि- मोचरस, नागरमोथा, धायपुष्प ३-३ माशा, सोंठ १ माशा, अतीस २ माशा का जौ-कूट चूर्ण पोटली में बाँधकर १ पाव दूध तथा १ पाव जल में डालकर उबालें तथा दूध मात्र रहने पर मिश्री मिला दें।

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-6 No. 16 June 2020

मल गाढा होकर कठिन हो जाय तथा मल-त्याग की अप्रवृत्ति में दूध-जल देना चाहिए।

14. दूध-सेवन के प्रारम्भ में आम कम होता है और आँतों में सञ्चित होने लगता है तथा रोगी घबराने लगता है, ऐसी अवस्था में दूध की मात्रा बढ़ाते जाना चाहिए।

तक्र विधान :

प्रथम दिन ७५० मिली दूध से बने तक्र का प्रयोग करना चाहिए, भूख के अनुसार २५० मिली तक्र की वृद्धि प्रतिदिन करना चाहिए या कुछ-कुछ दिन ठहर कर भी वृद्धि कर सकते हैI बढता हुआ मात्रा उतना ही रखना है कि अजीर्ण न हो, मात्रा इतनी ही हो की वुभुक्षा बनी रहेI

पर्पटी की मात्रा घटाने की आवश्यकता नहीं है । रोगी जितना तक्र पी सके उतना पिलाते रहना चाहिए, प्रतिदिन ५-६ लीटर तक तक्र ग्रहणी रोगी को उसके अग्नि के अनुसार पिला सकते हैI अंकुश कृमि (Tape power) में तक्र सैंधव लवण और भूना जीरा चूर्ण का प्रयोग कर सकते है शोथ होने पर सैंधव लवण न खायेI

अपथ्य-

१.दूध-सेवन काल में नमक के पदार्थ, तैल के तले हुए पदार्थ, लाल मिर्च का प्रयोग नहीं कराना चाहिए।

२.चिकित्सा-काल में परिश्रम, व्यायाम, मद्य, मैथुन, मानसिक चिन्ता, रात्रि-जागरण पूर्णत: वर्जित हैं।

३.पर्पटी-काल के समाप्त होने पर सहसा प्राकृत भोजन पर रोगी को कदापि नहीं लाना चाहिए। संसर्जन क्रम करते हुए प्राकृत आहार पर लाना चाहिए जैसे- प्रथम दिन लाजामण्ड, दूसरे दिन लाजपेया, तीसरे दिन पुराना चावल २ तोला फिर १-१ तोला दें, अन्न का सम्यक् परिपाक होने पर १ पाव तक चावल की मात्रा पहुँचाकर बन्द कर देनी चाहिए। दूध की मात्रा क्रमश: धीरे-धीरे घटानी चाहिए।

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-6 No. 16 June 2020

४.इसके बाद मूँग की दाल, अरहर की पतली दाल तथा बिना मसाले की सब्जी देनी चाहिए। पथ्य का पाचन हो इसके लिए पंचकोल चूर्ण भोजन के साथ देते रहना चाहिए।

५.संग्रहणी में काया–कल्प ही अनुपम विधि है। इसके अतिरिक्त अन्य चिकित्सा–प्रणाली कुछ भी लाभ नहीं देती।

संग्रह ग्रन्थ–

१) **अष्टाङ्गहृदयम्** –श्रीमद्वाग्भटविरचित विद्योतिनी भाषा टीका, टीकाकार– कविराज अत्रिदेव गुप्त, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण पुनर्मुद्रित २००७

२) **चरक संहिता** –विद्योतिनी हिन्दी भाष टीका, टीकाकार– काशीनाथ शास्त्री एवं गोरखनाथ चतुर्वेदी, पुनर्मुद्रित सन् २००३, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी

३) **महर्षि सुश्रुत प्रणीत** –सुश्रुत संहिता, सुश्रुत विमर्शिनी हिन्दी व्याख्या सविमर्श, व्याख्याकार डा. अनन्तराम शर्मा, पुनर्मुद्रित संस्करण २००४, प्रथम भाग, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

४) **आयुर्वेद सार संग्रह**, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि., अष्टादश संस्करण, १९९६

Copyright © 2020 Authors